साक्षात्कार

विज्ञान शिक्षण में आमूल परिवर्तन की जरूरत : अरविंद गुप्ता

अरविंद गुप्ता से मनीष श्रीवास्तव की बातचीत

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी अरविंद गुप्ता देश के प्रसिद्ध विज्ञान संचारक एवं खिलौना अन्वेषक है। आप तीन दशकों से भी अधिक समय से विज्ञान जागरूकता को लेकर कार्य करते आ रहे हैं। विशेषकर बच्चों में खिलौनों के माध्यम से विज्ञान संचार का अद्‌युत कार्य आपने किया है। हिन्दी और अंग्रेजी के अलावा आपने देश की कई क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान आधारित पुस्तकों का लेखन तथा अनुवाद किया है। विज्ञान के प्रति आपके समर्पण तथा की गई सेवा के लिए कई राष्ट्रीय एवं अंतरराष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित किया जा चुका है। वर्तमान में आप पुणे की इन्टर यूनिवर्सिटी सेन्टर फॉर एस्ट्रोनॉमी एण्ड फिजिक्स संस्था में विज्ञान लोकप्रियकरण का कार्य कर रहे हैं। हाल ही में श्री गुप्ता से उनकी अब तक की विज्ञान यात्रा के अनुभवों को साझा करने का अवसर प्राप्त हुआ। प्रस्तुत है साक्षात्कार के अंश :

मनीष श्रीवास्तव – कृपया अपनी शिक्षा और पृष्ठभूमि के बारे में बताएं?
अरविंद गुप्ता– मैं मूलतः बरेली, उत्तर प्रदेश का रहने वाला हूं। वहां से यूपी बोर्ड से बारहवीं की परीक्षा के बाद मैंने 1970 में आई आई टी में प्रवेश किया। वहां पांच वर्ष बाद इलेक्ट्रिकल इंजीनियरिंग में बी टेक हासिल की। उसके पश्चात मैंने पांच वर्ष पुणे स्थित टाटा मोटर्स में काम किया। पिछले 11 सालों से मैं आयुका, पुणे विश्वविद्यालय में स्थित एक बच्चों के विज्ञान केंद्र में कार्यरत हूं।

मनीष श्रीवास्तव – विज्ञान लोकप्रियकरण के क्षेत्र में आपको काम करने का विचार कैसे आया?
अरविंद गुप्ता– 1970 के दशक में दुनिया भर में तमाम जनआंदोलन उभरे थे। तभी रैचल कार्सन ने 'सायलेंट स्प्रिंग्स' नामक पुस्तक लिखी थी जिससे दुनिया में पर्यावरण आंदोलन का सूत्रपात हुआ। अमेरिका में सिविल–राईट्स और वियतनाम युद्ध विरोधी आंदोलन अपने चरम पर थे। भारत में भी जयप्रकाश नारायण और नक्सली आंदोलनों की शुरूआत हुई थी। जब कभी समाज का राजनैतिक मंथन होता है तो उससे बहुत सामाजिक उर्जा बाहर निकलती है। 70 के दशक में बहुत से वैज्ञानिक अपना एक सार्थक सामाजिक रोल खोज रहे थे। बहुत से वैज्ञानिकों ने कसम खाई थी कि वे राष्ट्र, धर्म आदि के नाम पर बम और मिसाइल के शोधकार्य में शरीक नहीं होंगे। मानवता को ध्वस्त करने की बजाए वो कुछ सकारात्मक काम करना चाहते थे। उनमें एक व्यक्ति थे डा अनिल सद्‌गोपाल – जो कैलटेक, अमरीका से पी.एच–डी करने के बाद टीआईएफआर में कार्यरत थे। अल्पायु में अपनी नौकरी छोड़कर उन्होंने 1970 में मध्य प्रदेश होशंगाबाद में विज्ञान कार्यक्रम की शुरूआत की। 1972 में मुझे आईआईटी कानपुर में उनके एक भाषण को सुनने का सौभाग्य मिला। आईआईटी कानपुर में पांच साल तक मैंने गरीब बच्चों को पढ़ाने का काम किया। इसलिए मुझे डॉ सद्‌गोपाल का कार्य बहुत अनूठा लगा। फिर 1978 में टाटा मोटर्स, पुणे में कार्य करने के दौरान मैंने एक वर्ष की छुट्‌टी ली और वो समय होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम के साथ बिताया। उस एक वर्ष के अनुभव ने मेरे आगे के जीवन का पथ प्रशस्त किया।

मनीष श्रीवास्तव – खिलौनों के माध्यम से विज्ञान को रूचिकर बनाने तथा बच्चों को आकर्षित करने का अद्वितीय कार्य आपने किया है। इस विधा पर कार्य करने का विचार कैसे आया?
अरविंद गुप्ता– 1978 में होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम में काम करते समय पहले ही महीने में मैंने माचिस की तीलियों और साइकिल की वाल्व ट्‌यूब से दो और 3–आयामी आकृतियां बनाने का एक मकेनो डिजायन किया। वो स्थानीय, सस्ते सामान से बना था और उससे बच्चे ज्यामिती के साथ–साथ ढांचों और आणविक संरचनाओं के बारे में बहुत कुछ सीख सकते थे। बड़े कारखाने में नौकरी करने की बजाए बच्चों के लिए इस प्रकार के काम में मुझे बहुत ज्यादा मजा आया। भारत में खिलौने बनाने

अरविंद गुप्ता, स्वयं के द्वारा बनाये खिलौनों के साथ

की एक जीवंत परम्परा रही है। परम्परागत खिलौने फेंकी हुई वस्तुओं को दुबारा इस्तेमाल करके बनते हैं, इसलिए वे सस्ते और पर्यावरण–मित्र होते हैं। दूसरे, खिलौनों में अनेक विज्ञान के सिद्धांत छिपे होते हैं जिन्हें बच्चे खेल–खेल में बहुत सहजता से सीख सकते हैं। खिलौने हरेक बच्चे को पसंद होते हैं। इसलिए बिना बोझिल बने बच्चे खुशी–खुशी में खेलते–खेलते विज्ञान की बुनियादी बातें सीख सकते हैं।

मनीष श्रीवास्तव – बच्चे खिलौनों के माध्यम से जल्दी सीखते हैं या श्रव्य–दृश्य माध्यम अधिक प्रभावपूर्ण होते हैं? इस बारे में आपके अनुभव और दृष्टिकोण क्या है।

अरविंद गुप्ता– किसी बात को समझने से पहले बच्चों को अनुभव की जरूरत होती है। अनुभव में चीजों को देखना, सुनना, छूना, चखना, सूंघना, श्रेणियों में बांटना, क्रमबद्ध रखना आदि कुशलताएं शामिल है। इसके लिए बच्चों को ठोस चीजों से खेलना और प्रयोग करना अनिवार्य है। बच्चों के विकास के जितने भी सिद्धांत हैं वो इस पद्धति की पैरवी करते हैं। ऑडियो–विजुअल विज्ञापन बहुत सशक्त माध्यम हैं पर वो खुद अपने हाथों से चीजें बनाने और प्रयोग करने का पर्याय नहीं हैं।

मनीष श्रीवास्तव – बच्चों को विज्ञान के प्रति आकर्षित करने हेतु और कौन–कौन से उपाय किये जा सकते हैं?

अरविंद गुप्ता– सुदर्शन खन्ना की एक बहुत सुंदर पुस्तक है 'सुंदर सलौने, भारतीय खिलौने' इस पुस्तक को नेशनल बुक ट्रस्ट ने मात्र 40 रूपए में छापा है। इस पुस्तक में 100 सस्ते खिलौने बनाने की तरकीबें दर्ज हैं। विशेष बात यह है कि इन सभी खिलौनों को बच्चों ने सैकड़ों सालों से बनाया है और उन्हें सस्ती, स्थानीय चीजों से बनाना सम्भव है। कुछ खिलौने उड़तें हैं, कुछ घूमते हैं, कुछ आवाज करते हैं। इनसे बच्चे अपने हाथों से खुद मॉडल बनाना सीखेंगे। यह सस्ते, सुलभ मॉडल बच्चों को काटना, चिपकाना, जोड़ना और अन्य अनेक कौशल सिखाएंगे। इनके लिए किसी परीक्षा, टीचर अथवा मूल्यांकन की जरूरत नहीं होगी। अगर खिलौना ठीक नहीं बनेगा तो वो काम नहीं करेगा और बच्चे को खुद ही फीडबैक देगा। यहां पास–फेल का भी कुछ चक्कर नहीं होगा। मिसाल के लिए पुराने अखबार से पट्टियां फाड़ने का काम। अखबार की एक दिशा ;जिसमें उसके रेशे होंगे वहां लम्बी पट्टियां फाड़ना सम्भव होगा। उसके विपरीत दिशा में केवल छोटे टुकड़े ही फटेंगे। यहां अखबार ही बच्चे का टीचर होगा। इसी प्रकार रेशे की दिशा में ही लकड़ी को छीलना (रंदा) सम्भव होगा, दूसरी में नहीं। हमारे स्कूलों में गतिविधि आधरित विज्ञान शिक्षण की बहुत जरूरत है। पर दुर्भाग्य यह है कि इस काम को अंजाम देने के लिए न तो प्रशिक्षित शिक्षक और न ही इस काम को करने वाली प्रेरक संस्थाएं हैं। नई सरकार को सबसे पहले तो उच्च कोटि के लोगों को टीचर ट्रेंनिंग संस्थाओं में लाना चाहिए जिससे कि वहां से कुशल, उत्साही और प्रेरित शिक्षक निकल सकें।

मनीष श्रीवास्तव – खिलौना अन्वेषक के रूप में कार्य करने के साथ ही आपने हिन्दी और कई क्षेत्रीय भाषाओं में विज्ञान लेखन का कार्य किया है। इसकी आवश्यकता क्यों महसूस हुई कृपया विस्तार से बताएं?

अरविंद गुप्ता– मूलतः मैं हिन्दी और अंग्रेजी में लिखता हूं। पर मेरी अधिकांश पुस्तकों का अन्य भारतीय भाषाओं में भी अनुवाद हुआ है। उदाहरण के लिए मेरी पहली गतिविधियों की पुस्तक 'मैचस्टिक मॉड्ल्स एंड अदर साइंस एक्सपेरिमेंट्स' का 12 भारतीय भाषाओं में अनुवाद हुआ। हां, मेरी वेबसाइट http://arvindguptatoys.com पर कुल मिलाकार 4000 पुस्तकें हैं जिन्हें लोग निःशुल्क डाउनलोड कर सकते हैं। इनमें बहुत सी पुस्तकें अपने देश की प्रांतीय भाषाओं में है। मिसाल के लिए विश्वविख्यात विज्ञान लेखक आइजक एसिमोव की 36 लाजवाब पुस्तकें मराठी में हैं। यह पुस्तकें इतनी रोचक हैं कि जो कोई भी उन्हें पढ़ेगा उसकी रूह आजीवन विज्ञान से चिपक जाएगी।

मनीष श्रीवास्तव –अंग्रेजी में विज्ञान पर काफी लेखन किया गया है लेकिन हिन्दी भाषा में इतना लेखन नहीं हुआ। क्या यह भी एक वजह है जिसके कारण विज्ञान के प्रति जन – जागरूकता में कमी आई है।

अरविंद गुप्ता– देश की प्रांतीय भाषाओं में लोकप्रिय विज्ञान की बेहद कमी है। सरकारी संस्थाओं की बहुत सीमाएं हैं। अधिकांश का आम लोगों की जिंदगी से कोई सरोकार नहीं है। हिन्दी को ही लें। 40–करोड़ हिन्दी भाषी हैं जो पांच बीमारू राज्यों में रहते हैं। यह आबादी बहुत बड़ी है और इसमें अपार सम्भावनाएं हैं। दुनिया के श्रेष्ठतम लोकप्रिय विज्ञान साहित्य को हिन्दी में अनुवाद करना जरूरी है पर किसी संस्था की इसमें रूचि नहीं है। हिन्दी की पुरानी संस्थाएं अब बूढ़ी हो चली हैं और मृत्यु की कगार पर हैं। 90 वर्ष से इलाहाबाद से

छपती 'विज्ञान' की मात्रा 2–3 हजार प्रतियां ही छपती होंगी और हिन्दी भाषी हैं 40–करोड़। हिंदी अकादमी और अन्य संस्थाएं लोगों की जिंदगी, उनकी आकांक्षाओं से पूरी तरह कटी हैं। उसके उपर एक और तुर्रा है। कौन कहता है कि हिन्दी में लोग नहीं पढ़ते?पर क्या पढ़ते हैं – मेरठ से प्रकाशित घटिया जासूसी उपन्यास – 'खूनी पंजा' 'मौत का शिंकजा' आदि जिनके पहले संस्करण का प्रिंट आर्डर 5–लाख प्रतियां होता है! दरअसल हिन्दी जगत में अच्छे साहित्य – विशेषकर बाल–साहित्य और विज्ञान की लोकप्रिय पुस्तकों का एकदम टोटा है। 90 वर्ष से अमेरिका में हर साल उत्कृष्ट बाल साहित्य के लिए दो पुरस्कार दिए जाते हैं – न्यूबेरी मेडिल और सबसे सुंदर चित्रकथा के लिए कैल्डीकॉट मेडल। हिन्दी में नेशनल बुक ट्रस्ट ने मात्र एक न्यूबेरी पुरस्कृत पुस्तक धनगोपाल मुखर्जी की 'गे–नेक' छापी है। दुनिया के सर्वश्रेष्ठ बाल साहित्य से हमारे बच्चे अनजान हैं। यह हिन्दी जगत की गहरी जड़ता का द्योतक है। हम अक्सर भारत की चीन से कल्पना करते हैं। पर हमारी मिट्टी ही बंजर है। यहां अच्छे बीज भी कुम्लहाकर मुरझा जाते हैं। बच्चों के आगे बढ़ने के लिए कोई रास्ता नहीं है। हमारा काम 'मिट्टी बनाने' का है, यानि दुनिया के बेहतरीन साहित्य को बच्चों और शिक्षकों तक सरल हिन्दी में अनुवाद करके उसे इंटरनेट के माध्यम से निःशुल्क उपलब्ध कराने का ऐतिहासिक काम।

मनीष श्रीवास्तव – दो दशकों से भी अधिक समय से आप विज्ञान के प्रति जनचेतना जगाने का प्रयास करते आ रहे हैं। क्या अब तक के प्रयासों से संतुष्ट हैं?

अरविंद गुप्ता– मेरी वेबसाइट से रोजाना 15,000 पुस्तकें डाउनलोड होती हैं और 40,000 वैज्ञानिक प्रयोगों के वीडियो देखते हैं और यह सब निःशुल्क। अभी तक 3–करोड़ बच्चे हमारी विज्ञान फिल्मों को 18–भाषाओं में देख चुके हैं। यह अवश्य सांत्वना की बात है। यह आंकड़े सिर्फ यह दर्शाते हैं कि हमारे लोगों में ज्ञान और विज्ञान की अपार भूख है। इस भूख की तुष्टि के लिए हिन्दी भाषी संस्थाओं को अभी बहुत कुछ करना बाकी है। व्यक्तिगत प्रयास अनूठे हो सकते हैं पर अकेला चना भाड़ नहीं फोड़ सकता। इसके लिए राज्य और समाज की संस्थाओं को सजगता से कार्य करना पड़ेगा। जो कार्य हमारे सामने मुंह बाए खड़ा है उसके हिसाब से संतुष्टि का प्रश्न ही नहीं होता। एक मिसाल देता हूं। मैं खुद की विज्ञान में रूचि के लिए रूसियों का आभारी हूं। बचपन में मेरे छोटे शहर बरेली में याकूब पेरिलमैन – रूस के सर्वश्रेष्ठ लोकप्रिय विज्ञान लेखक की पुस्तकें 'फन विद फिजिक्स' 'फन विद एस्ट्रोनमी' सड़क पर 5 रूपए की मिलती थीं। इनमें से तमाम पुस्तकों का हिन्दी में अनुवाद भी हुआ था। 1990 में रूस के विखंडन के बाद यह दुर्लभ साहित्य अब पूर्णतः लुप्त हो चला है। रादुगा और मीर जैसे रूसी प्रकाशकों का नामोनिशां तक नहीं बचा है। पर किसी भी हिन्दी भाषा संस्था को इन पुस्तकों को स्कैन और डिजिटाइज करने की आवश्यकता ही महसूस नहीं हुई। यह हिन्दी की हमारी धरोहर थी। 'विज्ञान' पत्रिका जो 90 सालों से छप रही है को किसी ने अभी तक डिजिटलाइज कर निःशुल्क वेबसाइट पर क्यों नहीं डाला?

अरविंद गुप्ता को प्राप्त राष्ट्रीय पुरस्कार

- विज्ञान संचार हेतु डीएसटी विभाग भारत सरकार द्वारा राष्ट्रीय पुरस्कार
- रूचिराम साहनी अवार्ड 1993
- गरवारे वल्लभवन अवार्ड 2003
- सीएन आर राव एजुकेशन फाउंडेशन प्राइज 2010
- थर्ड वर्ल्ड एकेडमी ऑफ साइंस रीजनल प्राइज 2010

इसके अतिरिक्त भी आपको अन्य सम्मान प्राप्त हो चुके हैं

मनीष श्रीवास्तव – हमारा देश बेहद धार्मिक है। धर्म का आधार आस्था है और विज्ञान का तर्क। इस तरह के धर्मिक परिवेश में ऐसे कौन से प्रयास किए जा सकते हैं कि लोग धर्मिक के साथ ही वैज्ञानिक नजरिया भी अपनाएं।

अरविंद गुप्ता– भारत निश्चित रूप से एक धर्म प्रधान देश हैं जहां लोगों की आस्थाओं का हमें आदर और सम्मान करना चाहिए। दुनिया के अनेक चोटी के वैज्ञानिक धर्मिक होने के बावजूद महत्वपूर्ण, जन–उपयोग कार्य करते हैं। यहां माइकेल फैराडे का उदाहरण उपयुक्त होगा। वो एक लोहार के बेटे थे। पिता के लिए फैराडे को स्कूल भेजना सम्भव नहीं था। अगर आज फैराडे जीवित होते तो उन्हें उत्कृष्ट वैज्ञानिक शोधकार्य के लिए कम–से–कम चार नोबेल पुरस्कार अवश्य मिले होते। फैराडे की धर्म में गहरी आस्था थी फिर भी उन्होंने दुनिया में सबसे अव्वल वैज्ञानिक शोध किया। उससे भी अधिक उन्होंने बच्चों के लिए 'क्रिस्मस लेक्चर्स' का आयोजन किया। क्रिस्मस के समय इंग्लैन्ड में बच्चों की छुट्टियां होती थीं और उनके झुंड के झुंड फैराडे के लेक्चर सुनने आते थे। 33 साल तक यह 'क्रिस्मस लेक्चर्स' चले और उनमें 19 वर्ष फैराडे ने यह लेक्चर दिए। उनका सबसे मशहूर लेक्चर है – 'केमिकल हिस्ट्री आफ ए कैन्डिल' जिसको भाग्यवश विज्ञान प्रसार ने अंग्रजी और हिन्दी में छापा है। इस प्रकार का दूर–दूर तक कोई प्रयास हमारे यहां नहीं हुआ है। इसलिए धर्म के साथ–साथ विज्ञान का प्रचार–प्रसार भी सम्भव है। मुझे लगता है कि हमारे देश में धर्म का इतना प्रधान स्थान इसलिए भी है क्योंकि हमारे बहुत कम वैज्ञानिकों ने बच्चों के लिए कोई अच्छा साहित्य रचा है। बच्चों के लिए रोचक विज्ञान लिखना कोई आसान काम नहीं है। क्योंकि हिन्दी में विज्ञान साहित्य लगभग नगण्य है इसीलिए धर्म हावी है। जब लोग हर घटना पर सवाल पूछेंगे,

हरेक चीज की जड़ में जाएंगे, हर बात पर क्यों, कैसे पूछेंगे तभी वे विज्ञान की गहराई को समझेंगे। आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की एंटीबायोटिक्स द्वारा लाखों–करोड़ों लोगों की जानें बची हैं। 'चेचक–माता' आदि की उपासना से यह इलाज सम्भव नहीं होता। इस सरल तथ्य को साधारण धार्मिक लोग भी समझते हैं। इसलिए धर्म, विज्ञान का दुश्मन नहीं है। धर्म हमें नेक काम करने के मूल्य देता है और विज्ञान उसे वास्तविकता में अमल करने का रास्ता दिखाता है।

मनीष श्रीवास्तव – वैज्ञानिक चेतना जगाने हेतु कौन से प्रयास सरकारी और निजी तौर पर किए जा सकते हैं। इसके बारे में आपके सुझाव?

अरविंद गुप्ता– सरकारी और निजी संस्थाओं को निम्न कार्य करने चाहिए। एक बड़े पैमाने पर विज्ञान की लोकप्रिय किताबों का हिन्दी और अन्य प्रांतीय भाषा में अनुवाद। इन संस्थाओं को इसके लिए अच्छे अनुवादकों की एक फौज तैयार करनी चाहिए। ऐसे लोग जो सरकारी शब्दकोश देखे बिना, क्लिष्ट और जबड़ातोड़ भाषा का उपयोग किए बिना, सरल रोजमर्रा की हिन्दी जुबान में पुस्तकों का अनुवाद कर सकें। और सरकार को इन्हें छापने के जंजाल में नहीं पड़ना चाहिए। क्योंकि पुस्तकों को छापना–बेंचना सरकारी संस्थाएं अच्छी तरह नहीं कर पाती हैं। इन किताबों को फिर स्थानीय प्रकाशकों को छापने के लिए दे देना चाहिए। और सरकार को इन पुस्तकों के पीडीएफ बनाकर एक वेबसाइट पर लोगों के उपयोग के लिए निःशुल्क डाल देने चाहिए। इस तरह धीरे–धीरे बूंद–बूंद करके एक ज्ञान के सागर का निर्माण होगा जिससे हमारे बच्चे, शिक्षक और सभी लोग लाभान्वित होंगे। लोकप्रिय विज्ञान की तमाम पुस्तकें कॉपीराइट से मुक्त पब्लिक डोमेन में हैं। सबसे पहले उनसे ही शुरूआत करनी चाहिए। रीडर्स डायजेस्ट के इतिहास में वैज्ञानिक लेखों की एक श्रृंखला 'आई एम जोज बॉडी' को अद्‌भुत सफलता मिली। शरीर के प्रत्येक अंग पर इन 26 लेखों को जे डी रैडक्लिफ ने लिखा है। किसी भी भारतीय भाषा में इन सुंदर लेखों का अनुवाद नहीं हुआ है।

मनीष श्रीवास्तव – हालिया दौर में जिस तरह से युवाओं को विज्ञान शिक्षा दी जा रही है। इस सम्बंध में आपके विचार क्या हैं?

अरविंद गुप्ता– हमारे छात्र विज्ञान को रटकर उनकी परिभाषाओं को परीक्षा में थूक आते हैं। वे बहुत अच्छे अंक भी प्राप्त करते हैं पर वैज्ञानिक दृष्टिकोण और विज्ञान के अचरज से अछूते रहते हैं। आप तैराकी पर चाहें कितनी भी किताबें क्यों न पढ़ लें, आप चाहें तैराकी पर अपनी पीएचडी भी क्यों न कर लें, आपको तैराकी तभी आएगी जब आप पानी में कूद कर अपने हाथ–पैर चलाएंगे। यह बात विज्ञान के लिए भी सच है। जब तक बच्चे अपने हाथों से प्रयोग नहीं करेंगे तब तक उन्हें विज्ञान का मजा और मर्म कैसे समझ में आएगा? विज्ञान शिक्षण में आमूल परिवर्तन होने चाहिए। होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम एक अनूठा प्रयास था। मध्य प्रदेश के एक लाख से अधिक बच्चे 'गतिविधि आधारित विज्ञान' सीख रहे थे। यह एक बेहद सस्ता और हमारी परिस्थितियों के अनुकूल कार्यक्रम था। पर आज से 15 वर्ष पहले डीपीईपी कार्यक्रम आया। इसमें विश्व बैंक का अथाह कर्ज था जिसे देख राजनैतिक वर्ग की लार टपकने लगी। डीपीईपी कार्यक्रम के लिए सरकार ने होशंगाबाद विज्ञान कार्यक्रम को बंद कर दिया और लाखों बच्चों को अच्छी विज्ञान शिक्षा से वंचित कर दिया।

मनीष श्रीवास्तव – इतने लम्बे समय से आप विज्ञान संचारक की भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। इस लंबी यात्रा के कुछ अनुभव हमारे साथ बांटना चाहेंगे।

अरविंद गुप्ता– मुझे अपने देश के 3000 स्कूलों में बच्चों के साथ काम करने का सौभाग्य मिला है। अभी तक मुझे स्कूलों में खराब मैनेजमेंट, खराब प्रिंसिपल और तमाम खराब शिक्षक मिले हैं पर अभी तक कोई खराब बच्चा नहीं मिला है। हर जगह मुझे बच्चों की आंखों में चमक और ज्ञान की भूख नजर आती है। यह सबसे बड़ी उम्मीद है। मुझे 20 देशों में बच्चों और शिक्षकों के साथ काम करने का मौका मिला है। पर हर बार जब मैं अपने किसी स्कूल में जाता हूं तो बच्चों में मुझे आशा दिखती है। हमारी पीढ़ी ने उनके लिए 'मिट्‌टी नहीं बनाई है'। यह काम अभी अधूरा है और इसे मरते दम तक हमें करते रहना है।

मनीष श्रीवास्तव – बच्चों और युवाओं हेतु आपका संदेश।

अरविंद गुप्ता– पिछली शताब्दी के महान अमरीकी लेखक मार्क ट्‌वेन ने कहा था, 'स्कूलों को अपनी असली शिक्षा में आड़े आने दो।' यह एक अच्छा मंत्र है। महामहिम अम्बेडकर ने भी हमें यही सीख दी थी, अपनी शिक्षा की जिम्मेदारी खुद अपने हाथों में लो। सरकारी और निजी संस्थाओं ;जिनमें स्कूल शामिल हैं का मुंह मत ताको। उनका नारा था – खुद शिक्षित हो, संगठन बनाओ और संघर्ष करो!

सह–संपादक इलेक्ट्रॉनिक आपके लिए
ए–16 गौतम नगर
भोपाल, मध्यप्रदेश
Email : mshrivastava147@gmail.com